International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197; Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2017; Page No. 879-880

हिन्दू संस्कृति में नारी का स्थान

डॉ० पूनम शर्मा
जम्मू विश्वद्यिालयः, जम्मू और कश्मीर, भारत।

प्रस्तावना

नारी त्याग और तपस्या की जाज्वल्यमान विभूति है। इन्हीं दोनों तत्वों के समन्वय से नारी का स्वरुप संगठित हुआ है भारतीय समाज में स्त्री त्याग एवं तपस्या का प्रतीक मानी जाती है। जहां माता के रुप में स्त्री संतान को जन्म देती है उससे निस्वार्थ प्रेम तथा पालन–पोषण करती है वहीं गृहिणी के रुप में वह पुरुष की सखा एवं मंत्री की भांति उसके घर की व्यवस्था करती है। पति एवं पिता दोनों के कुल को आनन्द प्रदान करती है इसलिए हिन्दू शास्त्रों में नारी के कन्यापन की, मातृत्व की तथा गृहिणीत्व की पूजा की गई है। माता के रुप में उसे शिक्षक से लाख गुना, पिता से हज़ार गुना गौरवशाली[1], जननी के रुप में स्वर्ग से भी अधिक महिमाशाली गृहिणी के रुप में लक्ष्मी, सखा[2], सहधर्मिणी धर्म एवं स्वर्ग का साधन तथा पुरुष की शक्ति भी बताया गया है। नारी साक्षात देवी एवं लक्ष्मी की स्वरुपभूता है। जहां पर स्त्रियों का आदर होता है वहां पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं जहॉ पर स्त्रियों का आदर नहीं किया जाता है वहां पर सभी कार्य निष्फल होते हैं एवं कुल का शीघ्र ही पतन हो जाता है कहा भी गया है कि

"यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः"।[4]

जहां नारी को सम्मान एवं सन्तोष प्राप्त होता है वहां सदा कल्याण होता है।

भारतीय संस्कृति में नारी उन्नत गौरव की अधिकारिणी सदैव से रही है स्त्रीत्व के नाते उसमें स्वतः ही स्वभाववशात अनेक प्रकार की दुर्बलताऍ विद्यमान रहती हैं इसीलिए तो भारतीय समाज शास्त्रियों ने 'न स्त्री स्वातन्त्रयमहति' का शङ्खनिनाद किया है यह कथन स्त्रीसमाज की निन्दा या अपमान का सूचक नहीं है अपितु वस्तुस्थिति का द्योतक है। नारी के संरक्षण का भार धर्मशास्त्रियों के अनुसार पुरुष पर है पुरूष को नारी की तीनों दशाओं (माता, पत्नी एवं कन्या) की रक्षा, मान–मर्यादा तथा प्रतिष्ठा के सरंक्षण कार्य करना है।

इसके अतिरिक्त जीवन के ताने–बाने में नारी का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है 'जननी का' जिसका प्रभाव पवित्र एवं संस्कृत है। 'माता' अपने बच्चों की प्रेरणा उन्हें पवित्रता एवं संयम सिखाने वाली वह शक्ति रूपा है जो चाहे कितनी भी अबला एवं स्खलनशील हो किन्तु माता के रूप में वह सर्वोत्कृष्ट है। हिन्दू धर्म में माता की अभिव्यञ्जना ईश्वर के रूप में की गई है। ईश्वरीय प्रेम और दयालुता की ऐसी अभिव्यञ्जना जो पूर्णता की सीमा को छूने का साहस कर सकती हो केवल माता के ही प्रतीक से हो सकती है क्योंकि ईश्वर सभी स्थानों पर प्रकट नहीं हो सकते इसलिए उन्होंने माता की सृष्टि की। हिन्दू संस्कृति में सभी स्त्रियों को माता कहकर सम्बोधन किया गया है यथा –

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि"

पत्नी के रुप में स्त्रि को 'जाया' शब्द से व्यवहत किया गया है। 'जाया' को 'जाया' इसलिए कहमते हैं कि पुत्र के रूप में पुरुष उससे जन्म लेता है[5] जहां ऐतरेय ब्राह्मण में 'जाया' को 'आभूतिरेषा भूति' अर्थात् यही शोभा है ऐश्वर्य है कहा जाता है वहीं ऋगवेद में 'जाया' को कल्याणी सुषमामयी[6] एवं पुरुष को विश्रामस्थल[7] कहा गया है। ये सब नारी के सम्मानित स्वरुप के द्योतक हैं। यदि पुत्री की बात करें तो पुत्री को 'दुहिता' शब्द से व्यवहृत किया गया है कन्याओं की करुणकथा उनके वाचक शब्दों में छिपी हुई मिलती है। जहॉ आचार्य यास्क भी कहतें हैं कि दुहिता 'दुर्हिता' है अर्थात सर्वत्र दुत्कारी जाती है।[8] वहीं आचार्य पतञ्जलि दुहिता की समानता पुत्र से करते हुए कहते हैं कि यदि पुत्र पवित्र करता है या आह्लादित करता है तो दुहिता भी पवित्र करती है, आह्लादित करती है[9] विषम समाज में विषम स्थिति होने के कारण नारी के विभिन्न स्वरुप होते गए किंतु किसी एक शब्द से नारी के विभिन्न स्वरुप की अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती।

वर्तमान समय में नारी की दुर्दशा का चित्र अनेक अंशों में प्रायः अतिरञ्जित होता है हिन्दु स्त्री की अवस्था आज भी अन्य देशों एवं जातियों की तुलना में कहीं अधिक अच्छी है अन्य धर्मों की बात करें तो जहां कुरान में पुरुषों को स्त्रियों से ऊंचा दर्जा प्राप्त है स्त्रियों को पीटने की आज्ञा है[10] एवं स्त्री को पति की खेती तक कहा गया है[11] वहीं बाइबल में स्त्रियों को पुरुषों की अधीनता आवश्यक है[12] तथा स्त्री को मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी कहा गया है।[13] हिन्दु धर्म में भी पत्नी के पति की अधीनता का आदेश है किन्तु यह पत्नी कर्त्तव्य के अन्तर्गत निहित है एवं कौटुम्बिक शान्ति के उद्देश्य से है अन्यथा परस्पर गृहकलह एवं प्रतिस्पर्द्धा होती है। पत्नी को मित्रवत् एवं अपने समान समझने के लिए हिंदू–शास्त्र में उपदेश ही नहीं दिए गए हैं अपितु इन्हें व्यवहार में लाने एवं सुरक्षित रखने के भी कई उपाय निर्दिष्ट किए गए हैं दान, धर्म, कर्म में पत्नी की सम्मति लेना तथा उसका सहयोग अत्यंत आवश्यक माना गया है धन को संभालने एवं व्यय का कार्य भी स्त्री को दिया गया है।[14] मनु के अनुसार स्त्री–पुरुष मृत्युपर्यन्त धर्म–अर्थ में साथ–साथ रहे। यही स्त्री–पुरुष का धर्म है।[15]

भारतीय संस्कृति में यद्यपि नारी का उसके घर से ज़्यादा सम्मान है तथा उसके नैतिक अधिकार अत्यधिक स्थिर एवं सुरक्षित हैं तथापि उसमें और भी सुधार की आवश्यकता है। स्त्रि की जो दुर्दशा दृष्टिगोचर होती है उसका एक कारण पाश्चात्य संस्कृति है जिसने

जहां जीवन को स्वार्थी एवं विलासी बनाया है वहीं दरिद्रता तथा असन्तोष को भी बढ़ावा दिया है आवश्यकता है तो बस पाश्चात्य सभ्यता का त्याग कर भारतीय संस्कृति को अपनाने की तभी नारी सही मायनों में प्रसन्नता पूर्वक रह सकती है।

संदर्भ

1 मनु॰ स्मृ॰ – 2/245
2 सखा ह जाया – ऐ॰ ब्रा॰ – 8/3/13
3 अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणोमात्मनश्रृच हं।। मनु॰ स्मृ॰ – 7/28
4 मनु॰ स्मृ॰ 3/55 – 60
5 तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः। ते० उ०
6 'कल्याणी जाया सुरणं गृहे ते'। ऋ० वे० 3/53/6
7 'जायेदस्तं मघवन् सेदुयोनिः'। ऋ० वे० 3/53/4
8 'दुहिता दुर्हिता, दूरेहिता' नि० 3/4
9 'यदि पुनाति प्रीणातीति वा पुत्रः दुहितर्यप्येतद् भवति' अष्टा० 1/2/62
10 कु॰ – 4/38
11 कु॰ – 2/223
12 जेनसिस 3/16: 1 कोरिन्थिअन्सा 12/9: 24/34: 1
1 टिमोथी 21–5 एफेशिअन 5/22–4
13 एक्लेजिएस्टेज 7/26
14 मनु॰ स्मृ॰ 9/22
15 मनु॰ स्मृ॰ 9/101